महात्मा गांधी की शिक्षा दृष्टि और उसकी प्रासंगिकता

गिरीश्वर मिश्र*

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही शिक्षा के माध्यम से देश के सामाजिक विकास और उत्थान का स्वप्न देखा जाने लगा था। विशेष रूप से देश की विविधता को ध्यान में रखकर इस पर बल दिया गया। एक देश के रूप में प्रत्येक भारतवासी एक ऐसा समाज चाहता है, जिसमें सबके लिए न्याय, समता और समान अवसर हों। शिक्षा का सामाजिक गतिशीलता के साथ गहरा संबंध है। अत: शिक्षित होकर लोगों के आर्थिक-सामाजिक स्तर में सुधार तो स्वाभाविक है, क्योंकि शिक्षित व्यक्ति के पास ज्ञान और कौशल अधिक होता है, जिससे उन्हें कम पढ़े-लिखे लोगों पर तरजीह मिलती है। पर बात यहीं खत्म नहीं होती है, व्यक्ति अपने ज्ञान और कौशल का दुरुपयोग करते हुए भ्रष्ट तरीके अपनाने लगता है। ताकि थोड़े श्रम से या बिना श्रम के ही अधिक से अधिक धन-संपत्ति प्राप्त कर सके। ऐसे लोग अपनी बुद्धि का उपयोग नियम, कानून आदि को धोखा देते हुए देश-विदेश में धन संपत्ति को बढ़ाने में करते हैं, इसलिए महात्मा गांधी की शिक्षा दृष्टि वर्तमान समय में बहुत प्रासंगिक है। यह व्यक्तियों के चरित्र निर्माण के साथ-साथ उनमें नैतिकता की वृद्धि भी करती है। इस प्रकार, यह लेख गाँधी जी की शिक्षा दृष्टि और उसकी प्रासंगिकता पर चर्चा करता है।

आज समाज में हर तरह की लिप्सा बढ़ रही है। दूसरी ओर शारीरिक कार्य को हीन दृष्टि से देखा जाने लगा है। सबसे खतरनाक बात तो यह है कि आपराधिक काम में रसूखदार लोग भी शामिल हो रहे हैं और कानून द्वारा पकड़े जाने के अंदेशे में जब कोई मार्ग नहीं बचता है तो आत्महत्या जैसा कदम भी उठा लेते हैं। सुशिक्षित लोगों में स्वार्थ साधते रहने और स्वार्थपरता की प्रवृत्ति तीव्रता से बढ़ती जा रही है। इस परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के स्वरूप पर पुनर्विचार करने की ज़रूरत प्रकट होती है। आज की औपचारिक शिक्षा में व्यक्तिगत उन्नति ही लक्ष्य माना जा रहा है और शिक्षा पाने के क्रम में विद्यार्थी समाज से नहीं जुड़ पाता है, यह ज़रूर है कि वह समाज, समूह और सामाजिक संस्थाओं को अपने लिए साधन मानने लगता है। इस स्थिति के घातक परिणाम दुर्घटनाओं और विभिन्न तरह की सामाजिक हानि के रूप में दिख रहे हैं। इस अवस्था में महात्मा गांधी के विचार सोचने को मजबूर करते हैं, जो आज से एक सदी पहले प्रतिपादित किए गए थे, जिसमें एक सामाजिक व्यक्ति की और चरित्र-प्रधान शिक्षा की व्यवस्था थी। गांधी जी की नैतिक दृष्टि का आधार ईशावास्योपनिषद का विचार था, जिसमें सारी सृष्टि को ईश्वर से व्याप्त कहा गया है तथा मनुष्य को

** पूर्व कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, 307 टावर -1, पार्श्व मैजेस्टिक फ्लोर्स, वैभव खंड, इंदिरापुरम, गाज़ियाबाद 201014*

ईश्वर के प्रसाद को ग्रहण करना चाहिए। चूँकि ईश्वर सर्वत्र ही है, इसलिए अधिकार जताने की बात ही नहीं है, दूसरे का धन तो दूसरे का है, उस पर कब्जा नहीं जमाना चाहिए।

ईशा वास्यमिदम् सर्वूम् यतिकिंम् जगत्याम् जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा: मा गृध: कस्यस्विद्धनम्।

महात्मा गांधी की शिक्षा-दृष्टि

'शिक्षा द्वारा व्यक्ति का निर्माण होता है' यह मानते हुए भी गांधी जी एक सामाजिक व्यक्ति की परिकल्पना करते थे और शिक्षा को उसका माध्यम या अवसर बनाना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। व्यवहार को नैतिकता और आचार का उपाय बताते हुए उन्होंने शिक्षा को हर तरह से समाज केंद्रित बनाने का प्रस्ताव किया और 'नई तालीम' की व्यवस्था को इसी विचार के इर्द-गिर्द बुना। वे इनके बिना शिक्षा को अधूरा और एक हद तक अस्वस्थ पाते थे, इनका समावेश होने पर ही बच्चे समाज की ओर उन्मुख होकर उसकी सेवा की दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। जैसा कि प्रसिद्ध है, गांधी जी आधुनिक मशीन के उपयोग के विरुद्ध थे, उनके विचार में इनके आने से समाज में गुलामी और असंतोष की प्रवृत्तियाँ ही बढ़ेंगी। इसलिए, वह चरखा चलाने और अन्य हस्त कौशलों को सीखने पर बल देते थे। उनकी कल्पना की शिक्षा उद्देश्यपूर्ण, सर्जनात्मक और उपयोगी थी। शिक्षा की व्यवस्था से व्यक्ति में स्वावलंबन आना चाहिए। शिक्षा का सामाजिक चरित्र गांधी जी के लिए सबसे अधिक महत्व का था, उनके विचार में शिक्षा का उद्देश्य समाज के लिए युवा वर्ग को तैयार करना था और इस प्रक्रिया में मूल्यों का केंद्रीय महत्व था।

महात्मा गांधी 'पूर्ण मनुष्य' के निर्माण के लिए समर्पित शिक्षा के पक्षधर थे। वह यह भी सोचते थे कि नैतिकता और सामाजिकता के विकास के लिए विभिन्न धर्मों की शिक्षा अनिवार्य होनी चाहिए। भारत की विविधता को देखते हुए विभिन्न धर्मावलंबियों के साथ सहिष्णुता और पारस्परिक आदर का भाव विकसित करने के लिए बच्चों को दूसरे धर्मों की आधारभूत जानकारी आवश्यक रूप से मिलनी चाहिए। गांधी जी की दृष्टि में चरित्र के अभाव में शिक्षा और ज्ञान का कोई मूल्य नहीं होता है, अत: नैतिक और आचार शास्त्र का ज्ञान बहुत आवश्यक है। उनका विश्वास था कि हस्त-कौशल के उत्पाद की बिक्री से विद्यालय स्वावलंबी हो सकेगा, इस तरह की व्यवस्था के अनुसार विद्यालय स्वतंत्र और स्वायत्त हो सकेंगे। अच्छी तरह से शिक्षित व्यक्ति वह होता है, जिसकी इंद्रियाँ उसके वश में हों, बुद्धि निर्मल हो और प्रकृति के आधारभूत सिद्धांतों का ज्ञान हो।

गांधी जी आदर्शवादी, प्रयोजनमूलक और दूरदर्शी व्यक्ति थे, वे मानते थे कि सत्य को विश्वास और विचार दोनों में ही उपस्थित होना चाहिए। उनके लिए व्यक्ति और समाज अविभाज्य थे, अत: एक व्यक्ति द्वारा की जाने वाली मानवीय क्रिया का प्रभाव सिर्फ़ अकेले व्यक्ति तक ही नहीं रहता, बल्कि सारी मानवता को प्रभावित करता है। सतत प्रश्न और स्वस्थ उत्सुकता तो हर तरह के सीखने का आधार होता है, परंतु सूचना अर्जित करना और प्रशिक्षण मानव समाज के हित में होने चाहिए। महात्मा गांधी ने स्वाभिमानी, उदार और परिश्रमशील लोगों के समाज की परिकल्पना की थी, गांधी जी द्वारा हस्त कौशल की शिक्षा पर बल देना इसी परियोजना का

© NCERT not to be republished

हिस्सा था। बुनियादी शिक्षा में समाज के निचले वर्ग को भी जगह मिली हुई थी। चूँकि सीखना दैनंदिन जीवन में घटित होता है, जिसमें व्यक्ति को स्वयं पहल करनी होती है और एक-दूसरे के साथ सहकार भी अपेक्षित होता है, इसलिए स्वायत्तता और सहयोग दोनों का विकास शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है।

महात्मा गांधी की समाज-दृष्टि और शिक्षा का आयोजन

गांधी जी के विचार में सरकार या नौकरशाही का अध्यापक के कार्य में किसी तरह से बाहरी दखल नहीं होना चाहिए। अध्यापक को पाठ्यक्रम बनाने की भी छूट मिलनी चाहिए, उनके विचार में सुनिश्चित पुस्तक की जगह यदि अध्यापक अपनी रुचि से पढ़ाए तो मौलिकता आएगी। पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक आदि की दृष्टि से राज्य या सरकार का अधिकार सीमित होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य तो एक ही है कि बच्चे के शरीर, मन और आत्मा से श्रेष्ठतम उद्घाटित कर उसका विकास किया जाए। सर्वांगीण विकास के लिए शरीर और मस्तिष्क दोनों का विकास साथ-साथ होना चाहिए। आध्यात्मिक और शारीरिक विकास मिल कर समग्र बनाते हैं। शिक्षा सामाजिक पुनर्निर्माण की एक विधि है, जिसमें बच्चे को एक प्रतिभागी के रूप में शामिल कर सहयोग और समूह दायित्व का भाव तथा वैयक्तिकता की प्रवृत्ति को रोका जा सकता था। गांधी जी की दृष्टि में विद्यालय एक लघु समाज था, यदि सभी प्रतिभागी अपने अधिकार और दायित्व के साथ सीखने-सिखाने के काम में भाग लें तो वर्ग भेद और असुरक्षा भी कम होगी। आधुनिक सभ्यता की मुश्किलों को उन्होंने पहचाना था। उसमें प्रचारित सामाजिक प्रगति के खोखलेपन को भी देखा था। आज शिक्षा के गिरते स्तर और समाज में मूल्यों के प्रति बदलते रुझान को देखते हुए भारतीय शिक्षा में सामाजिक सरोकारों की प्रतिष्ठा के लिए स्थान बनाना ज़रूरी है।

महात्मा गांधी का अनुभव और शिक्षा के विविध प्रयोग

महात्मा गांधी भारतीय समाज और संस्कृति की दशा और दिशा पर निरंतर विचार करते रहे। इस दृष्टि से शिक्षा भी उनके सरोकारों में प्रमुख प्रश्न के रूप में उपस्थित थी। औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति के लिए शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण अस्त्र था, उन्होंने स्वयं भारत और इंग्लैंड में शिक्षा प्राप्त की थी, परंतु बाद के जीवन में उन्होंने शिक्षा में औपचारिक प्रयोग भी किए। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने फ़ीनिक्स फार्म में बच्चों को शिक्षा देने का आयोजन किया था। बिहार के चंपारण में रहते हुए गांधी जी ने प्राथमिक विद्यालय भी आरंभ किए थे। वर्धा जनपद के सेवाग्राम में रहते हुए उन्होंने नई तालीम नाम से शिक्षा की पद्धति भी विकसित की, जिसके अंतर्गत प्रकृति के साथ सामंजस्य बैठाते हुए बच्चे में विद्यमान प्रतिभा को प्रकट करने का लक्ष्य रखा गया। सेवाग्राम के परिसर में आनंद निकेतन विद्यालय अभी भी शिक्षण की इस परंपरा में आगे बढ़ रहा है। गुजरात विद्यापीठ और बनारस में काशी विद्यापीठ में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी गांधी जी के विचार को आगे बढ़ाया जा रहा है। यहाँ पर गांधी जी द्वारा शिक्षा को लेकर जो विचार व्यक्त किए गए हैं, उनके आधार पर शिक्षा की उनकी दृष्टि और अवधारणा के आधारभूत पक्षों को प्रस्तुत किया गया है।

© NCERT not to be republished

शिक्षा का उद्देश्य समग्र मनुष्य का निर्माण करना है

गांधी जी की दृष्टि में शिक्षा प्राप्त कर मनुष्य अपने जीवन में उदात्त रूप प्राप्त करता है। उनके शब्दों में, "शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य को सच्चे अर्थ में मनुष्य बनाना है, जो शिक्षा मानवीय सद्गुणों के विकास में योग नहीं देती और व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का मार्ग नहीं प्रशस्त करती वह शिक्षा अनुपयोगी है। मेरे विचार से मानव बनना अत्यंत महत्वपूर्ण शिक्षा है" (*नवजीवन,* 10.10.1920)। इस तरह शिक्षा मनुष्य के व्यक्तित्व-परिष्कार द्वारा मनुष्य में नई संभावनाओं को उजागर करती है। साथ ही इस प्रक्रिया में सद्गुणों के विकास की केंद्रीय भूमिका होती है, दूसरे शब्दों में सात्विक गुणों का स्थापन करना ही शिक्षा का उद्देश्य है।

गांधी जी, शिक्षा को उस व्यापक भारतीय परंपरा में स्थापित करते हैं, जिसमें आत्म-ज्ञान ही विद्यार्जन के परम ध्येय के रूप में स्थापित और स्वीकार किया गया है—'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति, वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि—"भारतीय संस्कृति में शिक्षा को केवल जीविकोपार्जन का साधन मात्र नहीं माना गया है, वह तो आध्यात्मिक जीवन की दीक्षा है, जिसे हम सत्य और सद्गुण के अवगाहन में आत्मा की एक खोज भी कह सकते हैं। यह वस्तुत: हमारा द्वितीय जन्म है, वह शिक्षा सचमुच शिक्षा नहीं, जो हमें सेवा और त्याग की प्रेरणा प्रदान नहीं कर सकती है। शिक्षा का महत्व तो तभी प्रकट होगा, जब वह अपने वातावरण को प्रभावित करेगी" (*यंग इंडिया,* 14.11.1929)।

शिक्षा की व्यापकता

गांधी जी शिक्षा से व्यापक अपेक्षा रखते थे। उनके अनुसार, "बालक की आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक क्षमताओं के पूर्ण विकास का दायित्व शिक्षा पर है" (*हरिजन,* 11.9.37)। इसे स्पष्ट करते हुए गांधी जी यह स्थापना करते हैं कि जब तक शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा का विकास एक साथ नहीं हो जाता तब तक मात्र बौद्धिक विकास एकांगी ही बना रहेगा। शिक्षा स्वयं में कोई लक्ष्य न होकर आत्मा के विकास का माध्यम है। गांधी जी मानते हैं कि "शिक्षा कोई साध्य वस्तु नहीं, बल्कि साधन है, और जिस शिक्षा से हम चरित्रवान बन सकें वही सच्ची शिक्षा मानी जा सकती है" (*शिक्षा की समस्या,* पृष्ठ संख्या 4)।

प्रतिभा का उन्मूलन

शिक्षा को लेकर गांधी जी का सबसे मुखर और प्रसिद्ध विचार इन शब्दों में व्यक्त हुआ है, "शिक्षा से मेरा अभिप्राय यह है कि बालक के शरीर, मन तथा आत्मा की उत्तम क्षमताओं को उद्घाटित किया जाए और बाहर प्रकाश में लाया जाए" (*हरिजन,* 31.7.1937)। वह यह स्पष्ट करते हैं कि बच्चे में विद्यमान प्रतिभा और क्षमता अर्थात् उसके स्वभाव को आधार बनाकर उसका उद्घाटन करना ही शिक्षा का प्रयोजन है। गांधी जी व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखकर विद्यार्थी के लिए विकल्प के पक्षधर थे, वे आँख मूँद कर शिक्षा को आरोपित नहीं करना चाहते हैं। वे शिक्षा की व्यापकता में विश्वास रखते हैं। वे मानते हैं कि, "शिक्षा जीवन का एक अंग नहीं है, बल्कि शिक्षा में जीवन का

© NCERT not to be republished

सर्वांग आ जाता है और आना चाहिए। इस जीवन दर्शन का जिसे साक्षात्कार हुआ है, वही शिक्षा का ऋषि है, वही शिक्षा पथ को प्रदीप्त करेगा" *(हिंदी नवजीवन,* 23.01.1930)। शिक्षा में आध्यात्मिक और शारीरिक विकास पर आरंभ से ही समान रूप से बल देना चाहिए न कि किसी एक पर अधिक और दूसरे पर कम। गांधी जी दृढ़ता से कहते हैं कि, "बुद्धि के विकास के लिए आत्मा और शरीर का विकास साथ-साथ तथा एक-सी गति से होना चाहिए" (*हरिजन,* 13.7.1937)।

शिक्षा में आध्यात्मिकता की उपस्थिति

आज की दुनिया में हो रही भौतिक प्रगति से सभी आश्चर्यचकित हैं और आर्थिक मूल्यों की उपलब्धि को ही सब कुछ मान बैठते हैं, परंतु गांधी जी की नज़र में, जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है, शिक्षा का वास्तविक प्रयोजन आत्मिक उन्नति के मार्ग पर चलना है, वह इस बात को सब तक पहुँचाना चाहते थे। "सच्चा विद्याभ्यास यह है, जिसके द्वारा हम आत्मा को, अपने आपको, ईश्वर को, सत्य को पहचानें। शिक्षा मात्र आत्मोन्नति के लिए होती है, इसलिए, इस प्रकार की शिक्षा लेनी चाहिए, जिससे यह उन्नति हो। सदाचार और निर्विकार जीवन ही सच्ची शिक्षा का आधार स्तंभ है, इस विचार का गंभीरता से प्रचार करना चाहिए" (*हरिजन सेवक,* 23.5.1935)।

उल्लेखनीय है कि मनुष्य की सत्ता बहुस्तरीय और बहुआयामी है। तैत्तिरीयोपनिषद् में वर्णित पंचकोश की अवधारणा इसे स्पष्ट करती है। संभवत: गांधी जी पंचकोश जैसी अवधारणा को ध्यान में रखते थे, तभी वह कहते हैं कि, "मनुष्य न तो बुद्धि है, न स्थूल पशु शरीर, न ही हृदय अथवा आत्मा मात्र है। पूर्ण मनुष्य बनने में इन तीनों का सस्वरित व अचल संयोग होना अपेक्षित है" (*हरिजन,* 8.5.1937)। यह अवश्य है कि आत्मिक ज्ञान की राह पर चलना सरल नहीं है, पर ज़रूरी अवश्य है। गांधी जी दक्षिण अफ्रीका में अपने अनुभव साझा करते हुए बताते हैं कि, "आत्म शिक्षण शिक्षा का एक स्वतंत्र विषय है। यह बात मैंने टाल्स्टाय आश्रम के बालकों की शिक्षा आरंभ करने के पहले ही समझ ली थी। आत्मा का विकास करने का अर्थ है चरित्र का गठन और ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करना, आत्म ज्ञान प्राप्त करना, यह ज्ञान प्राप्त करने में बालकों को बड़ी मदद की ज़रूरत है और यह मैं मानता था कि उसके बिना दूसरा ज्ञान व्यर्थ है और हानिकारक भी हो सकता है" (*सत्य के प्रयोग,* पृष्ठ संख्या 318)।

गांधी जी यह स्पष्ट मंतव्य व्यक्त करते हैं कि यदि समग्र शिक्षा की अवधारणा को व्यवहार में लाया गया तो "व्यक्ति शरीर, मन और हृदय से सुशिक्षित होकर मानवता को अधिकाधिक सुख व आनंद प्राप्ति की ओर अग्रसरित कर सकेगा, उनके लिए नैतिकता के नियमों के पालन और प्रयोग की आवश्यकता बताई है, जिससे आदर्श राज्य स्थापित हो सके" (*हरिजन,* 8.5.1935)।

शिक्षा और रोज़गार

यह विचार कि गांधी जी शिक्षा को रोज़गार और व्यावहारिक जीवन से नहीं जोड़ना चाहते थे, पूरी तरह से भ्रामक होगा। वस्तुत: वे आरंभ से ही शिक्षा को कौशल विकास से जोड़कर रखना चाहते थे। इस दृष्टि से वह हस्त-कौशल की प्राथमिकता पर बल देते थे, वे कहते हैं कि, "अक्षर ज्ञान हाथ की

© NCERT not to be republished

शिक्षा के बाद आना चाहिए, हाथ से काम करने की क्षमता। हस्त कौशल ही वह चीज़ है, जो मनुष्य को पशु से अलग करती है। लिखना-पढ़ना जाने बिना मनुष्य का संपूर्ण विकास नहीं हो सकता, ऐसा मानना एक वहम ही है। इसमें कोई शक नहीं कि अक्षर ज्ञान से जीवन का सौंदर्य बढ़ जाता है, लेकिन यह बात गलत है कि उसके बिना मनुष्य का नैतिक, शारीरिक और आर्थिक विकास नहीं हो सकता" (*हरिजन सेवक,* 13.3.1935)। गांधी जी चाहते थे कि शिक्षा किताबी ही न रहे, उसे जीवन संघर्ष के लिए हर तरह से तैयार करना चाहिए। उनके शब्दों में, "सारी शिक्षा किसी दस्तकारी या उद्योग के द्वारा दी जाए, प्रारंभिक शिक्षा में सफाई, स्वास्थ्य, भोजनशास्त्र, अपना काम आप करने और घर पर माता-पिता को सहायता देने इत्यादि के मूल सिद्धांत शामिल होंगे। वर्तमान पीढ़ी के बालकों को स्वच्छता और स्वावलंबन का कोई ज्ञान नहीं होता और वे शरीर से कमज़ोर होते हैं, इसलिए मैं संगीतमय कवायद के द्वारा उनको अनिवार्य शारीरिक शिक्षा दिलवाऊंगा" (*हरिजन,* 30.10.1937)। गांधी जी बच्चों की शिक्षा का प्रारंभ उपयोगी दस्तकारी सिखाते हुए करने के पक्ष में थे। वह चाहते थे कि जिस क्षण से बच्चा अपनी तालीम शुरू करे उसी क्षण से उसे उत्पादन का काम करने लायक बना दिया जाए।

शिक्षा कार्य में अधिगम की केंद्रीयता

गांधी जी अध्ययन कार्य की गंभीरता और जटिलता को स्वीकार करते थे। वे कहते थे कि, "तुमने जो ज्ञान प्राप्त किया है उसका लाभ तुम्हें उसी हद तक मिलेगा, जिस हद तक तुमने उसे हृदयंगम किया होगा। ज्ञान का बोझ छात्र पर नहीं लादना चाहिए। जितनी शिक्षा विद्यार्थी स्वभावत: आत्मसात कर सके उतनी ही शिक्षा देनी चाहिए" (*इंडियन ओपिनियन,* 15.7.1914)। इस दृष्टि से शिक्षा को अधिगम केंद्रित होना चाहिए। उनके शब्दों में, "सच्ची शिक्षा वह है, जिसमें बालक स्वयं पढ़ना सीखे, अर्थात् उसमें ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हो। ज्ञान तो बहुत तरह का होता है कुछ ज्ञान हानिकर भी होता है, तब यदि बालकों के चरित्र का निर्माण न हो तो वे अंधा ज्ञान सीखने लगते हैं। हम देखते हैं कि शिक्षा मनमाने ढंग से दी जाने के कारण ही कुछ लोग नास्तिक हो जाते हैं और बहुत कुछ पढ़-लिख जाने पर भी बुराइयों में फंस जाते हैं। इसलिए बालकों के चरित्र को दृढ़ करने में सहायता देना इस पाठशाला (फिनिक्स आश्रम की पाठशाला) का मुख्य हेतु है" (*संपूर्ण गांधी वाङ्मय,* पृष्ठ संख्या 140)।

शिक्षा की सांस्कृतिक संवेदना

गांधी जी औपनिवेशिक अंग्रेज़ी शिक्षा को भारत के लिए उपयुक्त नहीं मानते थे। उनके अनुसार, "वही शिक्षा सच्ची शिक्षा है, जो स्वतंत्रता का मार्गदर्शन करती है। केवल वही उच्च शिक्षा है, जो हमें अपने धर्म का संरक्षण करने के लिए समर्थ बनाती है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अंधानुकरण के कारण भारतीय शिक्षा में विदेशीपन की झलक स्पष्ट दीख पड़ती है, इसलिए भारत का उत्थान संभव नहीं है। मां, बाप, आचार्य, सबने प्राचीन आदर्शों और मूल्यों का परित्याग कर दिया, जिसके कारण विद्यार्थी में भी मूल्यबोध का ह्रास हो गया" (*नवजीवन,* 18.11.1920)।

वर्तमान भारतीय शिक्षा की विडंबनाएँ

महात्मा गांधी के अनुसार शिक्षा मनुष्य में अंतर्निहित स्वाभाविक गुणों और क्षमताओं की सहज परंतु

© NCERT not to be republished

समर्थ अभिव्यक्ति का माध्यम है। वह एक प्रकार की व्यवस्था है, जो विद्यार्थी को उसके परिवेश में स्थापित करती है और उसके मन, बुद्धि और शरीर सबको उनकी ज़रूरत के मुताबिक खुराक देती है। गांधी जी की विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए कई प्रयोग भी शुरू हुए जिनमें से कुछ अभी भी चल रहे हैं। पर उनमें से अधिकांशतः खस्ताहाल हैं। हाल ही में हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा द्वारा बिहार में जहाँ गांधी जी के ये प्रयोग (1918 में उनकी प्रसिद्ध चंपारण यात्रा के दौरान) आरंभ किए गए थे, उनका सर्वेक्षण किया गया। इन स्कूलों की स्थिति दयनीय है और अब उनका गांधी जी के विचारों और अभ्यासों से कोई विशेष सरोकार नहीं है। सरकार द्वारा अपनाई गई शिक्षा नीति की सामान्य रूपरेखा का दार्शनिक आधार कुछ और है और व्यवहार में स्थिति कुछ और ही दिखाई दे रही है।

वस्तुतः आम आदमी के लिए शिक्षा की दुरावस्था सर्वविदित है और उससे सभी क्षुब्ध हो रहे हैं। भौतिक आधार संरचना हो, अध्यापकों की उपलब्धता और उनका प्रशिक्षण हो, पाठ्यसामग्री की उपयुक्तता और गुणवत्ता हो या विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का मूल्यांकन, सब के प्रति समाज और सरकार दोनों के कमज़ोर दृष्टिकोण से स्थिति और भी जटिल होती जा रही है। इसका दुखद पक्ष यह है कि पूरी शिक्षा प्रक्रिया की साख या प्रामाणिकता ही संदिग्ध हो चली है। दूसरी ओर देश की जनसंख्या की दृष्टि से शिक्षा का विस्तार तथा प्रसार भी आवश्यक है। शिक्षा की प्रक्रिया में अधिकाधिक लोगों को शामिल करने की ज़रूरत है, उन्हें न केवल शिक्षित किया जाए, बल्कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दी जाए। मात्रा और गुण के सामंजस्य को बैठाया जाना चाहिए। यह सामंजस्य कैसे स्थापित करें? जब विद्यार्थी और अध्यापक निरंतर एक-दूसरे के सान्निध्य में रहें, पढ़ें, सीखें और ज्ञान प्राप्त करें, तो जिस तरह व्यक्ति का निर्माण होगा उसमें हम ज्ञान, कौशल और चरित्र तीनों के विकास का लक्ष्य पाने की ओर आगे बढ़ सकते हैं। इस स्थिति में अध्यापक विद्यार्थी से हर तरह से जुड़ा हुआ रहता है। शिक्षा की विषय-वस्तु को विद्यार्थी की आयु या परिपक्वता के अनुसार सुनिश्चित करना भी आवश्यक है।

शैक्षिक मूल्यांकन और उसकी साख की मुश्किलें बढ़ती जा रही हैं। विद्यार्थियों की संख्या बढ़ी है और उनके मूल्यांकन को सुविधाजनक बनाने के लिए सारी परीक्षाएँ वस्तुनिष्ठ (ऑब्जेक्टिव टेस्ट) में तब्दील हो रही हैं। इसमें चार विकल्प होते हैं, जिनमें एक सही होता है। आँख मूँद कर भी करिए तो कुछ न कुछ सही हो जाएगा। इसमें सोचने-समझने की क्षमता, सृजनात्मकता, मौलिकता आदि गुणों का मूल्यांकन करने का अवसर लगभग समाप्त होता जा रहा है, जैसे— नेशनल ऐलिजबिलिटी टेस्ट (नेट) में सभी प्रश्न ऑब्जेक्टिव प्रश्न हो चुके हैं, यह परीक्षा भावी अध्यापक देती है। अब अध्यापक को लिखना भी आता है कि नहीं, उसकी अभिरुचि क्या है? इत्यादि जानने का कोई सवाल नहीं होता है। लगभग ऐसी ही स्थिति अन्य परीक्षाओं की भी है, परीक्षा एक हादसे का रूप लेती जा रही है। गुणवत्तापूर्वक शिक्षा के कितने केंद्र हैं और अगुणवत्तापूर्वक डिग्री बाँटने वाले संस्थान कितनी भयानक गति से बढ़ रहे हैं, यह किसी से छुपा नहीं है। सुविधा, संख्या और साख इन तीनों के बीच संतुलन कैसे बनाया जाए, यह जटिल चुनौती बनती जा रही है। कभी-कभी लगता है कि शिक्षा को नष्ट करने का षडयंत्र

© NCERT not to be republished

हो रहा है कि वह पूरी तरह से ध्वस्त हो जाए। आज न पर्याप्त विद्यालय हैं न अपेक्षित मात्रा में अध्यापक हैं, न विषय के लिए हम सामग्री तैयार कर पा रहे हैं। समाज में शिक्षा के सामाजिक वितरण में विभेदीकरण और विशिष्टीकरण की विलक्षण प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। आज कुछ ही अच्छे विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभाग बचे हैं, परंतु अधिकांश अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। हमारी अस्पष्ट नीतियाँ और उनका अधूरा कार्यान्वयन शिक्षा संस्थाओं की बलि ले रहा है। आधार संरचना की दृष्टि से अध्यापकों की कमी का दूरगामी असर पड़ रहा है। यदि सरकार का शीघ्र हस्तक्षेप नहीं हुआ तो सरकारी विश्वविद्यालय बंद होने लगेंगे और प्राइवेट संस्थान जो धन उगाही के यंत्र सरीखे हैं, आगे बढ़ेंगे, यद्यपि उन पर गुणवत्ता का कमज़ोर नियंत्रण होता है।

आज भारतीय समाज बदल रहा है। उसकी ज़रूरतें बदल रही हैं और महत्वाकांक्षाएँ नए आयामों को छू रही हैं। इसे ध्यान में रखकर शिक्षा की समाज के साथ लय स्थापित करने पर विचार करने की ज़रूरत है। इस संतुलन को स्थापित करने के लिए बापू की समग्र मनुष्य के निर्माण वाली शिक्षा की दृष्टि को सामने रखना होगा। साथ ही स्वावलंबन के लिए कौशलों की शिक्षा को आरंभ से ही स्थान देना होगा। शिक्षा अस्त-व्यस्त स्थिति में विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में उनकी संस्थागत आवश्यकता पर विचार कर अच्छे शिक्षा केंद्र निर्मित करने होंगे, जहाँ शिक्षा को मानवीय मूल्यों से आलोकित किया जा सके। साथ ही इस प्रश्न पर भी गंभीरता से विचार करने की ज़रूरत है कि हम किस तरह शिक्षा के विविध अवसर पैदा करें तथा कुशलताओं का विकास करें। गांधी जी ने कहा था कि सीखने में शरीर की सभी ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग हो, श्रम का महत्व हो और स्थानीय संसाधनों का भी महत्व हो। एक ही तरह की शिक्षा विभिन्न प्रकार की क्षमताओं वाले विद्यार्थियों के अनुसार उपयुक्त नहीं हो सकती है, उदाहरण के लिए, कोई विद्यार्थी बागबानी या खेती पसंद करता है, कोई खेलकूद में रुचि रखता है, कोई गाता है, कोई बाजा बजाता है इत्यादि। वह किसी भी क्षेत्र में विशिष्टता पा सकता है। अतः शिक्षा के अंतर्गत हमें विविध प्रकार की योग्यताओं के लिए अवसर पैदा करने होंगे।

महात्मा गांधी ने बड़ी वेदना के साथ यह महसूस किया था कि भारत की शिक्षा तरु को अंग्रेज़ों ने उखाड़ दिया। दुर्भाग्य से अंग्रेज़ों ने जो पौधा रोपा और जिस राह को पकड़ कर देश स्वतंत्र भारत में आगे बढ़ा वह आज बाज़ार की दुनिया के सफल उपभोक्ता बनाने की ओर अग्रसर है। ऐसे में नई पीढ़ी में जो तनाव, कुंठा और असंतुष्टि बढ़ रही है वह स्वाभाविक है। भारतीय शिक्षा में न तो सर्वोदय के लक्ष्य ध्यान में रहे और न ही समाज का सर्वांगीण विकास हो सका। इसके अलावा टिकाऊ विकास के लक्ष्य की दिशा में भी बहुत कारगर कदम नहीं उठाया जा सका। सांस्कृतिक धरोहर के साथ लगाव की दृष्टि से भी जिस पथ पर भारतीय शिक्षा आगे बढ़ी वह सहिष्णुता, बंधुत्व और समावेशी जीवन दृष्टि को प्रतिष्ठापित करने में भी अपेक्षित सफलता नहीं पा सकी। साधना और सृजन के बीज बोकर आत्मोन्नति की बात भी नव उदारवादी दौर में बेमानी सी हो गई। प्रौद्योगिकी की प्रधानता और प्रकृति को संसाधन में बदलने की बुद्धि ने एक नई दुनिया का खाका तैयार

© NCERT not to be republished

किया है, परंतु इस राह में बढ़ती हिंसा, कलह और वैमनस्य की बहुलता तथा जलवायु परिवर्तन के चलते बढ़ती प्राकृतिक आपदाएँ यह प्रश्न उपस्थित कर रही हैं कि शिक्षा किस हद तक समग्र और जीवनदायिनी है। परीक्षा और प्रमाणपत्र की प्रधानता, बढ़ती औपचारिकता और मातृभाषा की उपेक्षा जैसे प्रश्नों के बीच उलझ कर भारतीय शिक्षा की वर्तमान स्थिति चिंताजनक होती जा रही है। इस स्थिति में महात्मा गांधी की शिक्षा दृष्टि की प्रासंगिकता कई दृष्टियों से विचारणीय है। उसे मानवीय मूल्यों के धरातल पर भी देखा जा सकता है कि गांधी जी के विचार किस तरह के मनुष्य का निर्माण करने की संभावना बनाते हैं। दूसरा स्तर यह है कि हम जिस परिस्थिति में मौजूद हैं, वहाँ पर गांधी जी की क्या प्रासंगिकता है? तीसरा अधिक तात्कालिक प्रसंग राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का है। ये तीनों संदर्भ एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 प्रकट रूप से भारत केंद्रित और ज्ञान केंद्रित शिक्षा के प्रति प्रतिश्रुत है। इसमें मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने और भारतीय ज्ञान परंपरा से जुड़ने की व्यवस्था की गई है। साथ ही रोज़गार की संभावना को बढ़ाने के लिए व्यावसायिक कौशल के अर्जन पर भी बल दिया गया है। विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि ये सभी प्रस्ताव महात्मा गांधी की अवधारणा के अनुरूप और उससे अनुप्राणित हैं। एक तरह से महात्मा गांधी के विचारों का पुनराविष्कार और पुनर्प्रतिष्ठा के प्रयास हो रहे हैं। इनके अतिरिक्त निम्नांकित बिंदु गांधी जी की शैक्षिक दृष्टि की प्रासंगिकता को व्यक्त करते हैं, जिन पर ध्यान दिया जाना चाहिए —

- बाल-केंद्रित शिक्षण की परिकल्पना में विद्यार्थी के अनुभव और उसकी गतिविधियों को केंद्र में रखा जाता है। गांधी जी की शिक्षा दृष्टि में बच्चे और वयस्क के बीच विच्छिन्नता (डिस्कंटीन्यूटी) के स्थान पर सातत्य का रिश्ता है। बच्चा केवल गतिविधि या खेल के द्वारा आनंद ही नहीं लेता है, वह उत्पादक कार्य द्वारा सृजन का भी सुख पाते हुए सीखता है। याद रहे उत्पादक कार्य का अर्थ पैसा कमाने की क्षमता नहीं है, बल्कि सर्जनात्मक तनाव से गुज़रते हुए विद्यार्थी अपने समाज और उद्यम के बीच 'मूल्य' अथवा उपयोगिता का निर्माण करता है।
- गांधी जी की शिक्षा प्रणाली में समग्र विकास के लिए विषय और अन्य (गैर अकादमिक) गतिविधियों में अंतर के स्थान पर एकीकृत तरीके से वास्तविक दुनिया का ज्ञान दिया जाता है। इस तरह विद्यालयी ज्ञान और सूचना के स्थान पर स्वाभाविक परिवेश में अन्वेषण का मौका दिया जाता है।
- उत्पादक कार्यों के अंतर्गत जिन गतिविधियों का चुनाव किया जाता है, वे देशज और स्थानीय ज्ञान और संस्कृति की परंपराओं का महत्वपूर्ण स्रोत होती हैं।
- यह भी गौरतलब है कि यदि भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना को ध्यान में रखें तो नई तालीम की पद्धति उपेक्षित वर्गों या समुदायों को जानने-समझने का अवसर उपलब्ध कराती है।
- गांधी जी की योजना से बच्चों में संग्रह करने की संस्कृति के स्थान पर सर्वोदयी चेतना का

© NCERT not to be republished

बीजारोपण होता है। जब हम नई तालीम को शिक्षण पद्धति के रूप में ग्रहण करते हैं तो यह एक सीमित (बचकानी) लगती है, परंतु शाश्वत विकास की संभावना इसी में है, जहाँ सह अस्तित्व, शांति और समानता जैसे मूल्य पनप सकते हैं।

- गांधी जी कि दृष्टि में एक अध्यापक सिर्फ़ पूर्वनिर्धारित पाठ्यसामग्री को पढ़ाने वाला यंत्र मात्र नहीं है, बल्कि वह अपने विषय और स्थानीय परिवेश में लगातार अन्वेषण करता रहता है और उनके समावेश के द्वारा शिक्षण को सृजनात्मक बनाता रहता है।
- गांधी जी विद्यालय और सामुदायिक जीवन के बीच संबंध की गहनता को महसूस करते थे और उसे मज़बूत बनाने के आधार के रूप में विद्यालय रूपी संस्था गाँव या समुदाय के लिए कोई 'बाह्य' तत्व नहीं रह जाता, बल्कि उनके बीच की संस्था हो जाता है जो वैज्ञानिक दृष्टि से उस स्थान विशेष की समस्याओं का समाधान करने और पुनर्निमाण करने का कार्य भी संपादित करता है।
- नई तालीम में स्वाभाविक रूप से आर्थिक अवसरों के लिए एक राह बनती है। स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता के तत्व इसमें जुड़े हैं।
- आज जब रोज़गार के लिए तैयारी, व्यवसायपरक प्रशिक्षण और मानवीय मूल्यों को आत्मसात करने के लिए जो अवसर ढूँढ़े जा रहे हैं वहाँ पर महात्मा गांधी का शिक्षा विषयक चिंतन एक ऐसे मार्गदर्शक का कार्य करता है, जो विद्यार्थी के समग्र विकास को समाज के कल्याण के साथ संयोजित करता है।

© NCERT not to be republished